प्राचीन काल में भारतीय व्यापार व्यवस्था ने 1700 साल तक दुनिया पर राज किया

भारत प्राचीन काल से व्यापार का केंद्र रहा है। सीन हर्किन के अनुसार सत्रहवी शताब्दी तक भारत और चीन का हिस्सा दुनिया की जीडीपी में लगभग ६० से ७० % तक हुआ करता था। भारत का व्यापार दुनिया के कई देशों में फैला हुआ था। यही नहीं कैम्ब्रिज के इतिहासकार एंगस मेडिसन के अनुसार – १७०० तक दुनिया की आय में भारत का २२.६ % हिस्सा था , जो लगभग सारे यूरोप की आय के हिस्से के बराबर था। पर अंग्रेजों के आने के बाद उनके शासन के बाद १९५२ तक यह हिस्सा घटकर सिर्फ ३.८ % तक रह गया। इसका मुख्य कारण मुख्यत: अंग्रेजों की तथा ईस्ट इंडिया कंपनी की भारत विरोधी नीतियाँ थी , इन सब कारणों से भारत के उद्योग नष्ट होते चले गए तथा किसान विरोधी नीतियों और अतिरिक्त करों से किसान तबाह हो गए। इसी कारण बाद में भारत में अकाल भी पढ़े और कई लोगों को अपनी जान गंवानी पढ़ी। इसके बाद का इतिहास सभी जानते हैं कि १९४७ के बाद से अब तक हम किस तरह एक पूंजीवादी और साम्यवादी मॉडल से बचते हुए मिश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में बढ़ते रहे।

आजादी के इतने साल बाद भी यह सोचने योग्य बात है कि भारत जैसा देश जिसने लगातार १७०० साल तक दुनिया की अर्थव्यवस्था पर राज किया , वो वापस उभर क्यों नहीं पा रहा। हम कभी पूंजीवाद तो कभी साम्यवाद, कभी एडम स्मिथ तो कभी कार्ल मार्क्स इन्ही सब को बार बार प्रयोग करते चले जा रहे हैं। पर आवश्यकता यह है कि जो प्राचीन समय में था उसे समझें तथा उन मूल कारणों को जाने जिनके कारण भारत विश्व की सर्वश्रेष्ठ अर्थव्यवस्था बन सका था। भारत में व्यापार के केंद्र में जाति रही है , जो की ज्ञाति शब्द का अपभ्रंश है। संस्कृत के ज्ञाति शब्द का अर्थ है 'जानकार' या वह व्यक्ति जिसे किसी विशेष कला का पूर्ण ज्ञान हो। जैसे ज्ञान को कई लोग ज्यान पढ़ते हैं , वैसे ही बाद में ज्ञाति शब्द जाति हो गया। भारत में हर वर्ग जो किसी विशेष कला में माहिर था उन्हें ज्ञाति कहा जाता था जैसे लोहार, कुम्हार, सुतार , बुनकर आदि। इन सभी के व्यापार के आधार पर भारत खड़ा था। आज़ादी के इतने साल बाद भी इन जातियों पर कोई ठोस शोध नहीं हुए हैं। बल्कि इसके उलट ऐसे शोध हुए हैं जिनमे यह कहा गया है की जातियां समाप्त कर देनी चाहिए। इस शोधपत्र में कुछ कामयाब जातियां जो अंग्रेजी शोषण के बाद भी बची रही तथा जिन्होंने अपनी जाति या समुदाय के आधार पर बड़ा व्यापार खड़ा किया है उनके कुछ उदाहरण दिए गए हैं तथा इन पर और शोध कार्य की आवश्यकता क्यों है , इस विषय पर प्रकाश डाला गया है।

प्राचीन भारतीय परंपरा :
भारत हमेशा से संयुक्त परिवार व्यवस्था में रहा है। यहाँ कई परिवारों को मिलाकर संयुक्त परिवार बनता था तथा उनके रिश्तेदारों को मिलाकर खानदान। इसी व्यवस्था में वर्ण, वंश, कुल, तथा जातियां बनी। इनकी विशेषता यह थी कि कोई भी भूखा, बेरोजगार या बेसहारा नहीं रहता था। बचपन से ही बच्चे को ज्ञाति विशेष के ज्ञान से अवगत करा दिया जाता था। उस हुनर के आधार पर बच्चा जिंदगीभर भूखा नहीं मरता था। सभी जातियों का आपस में इस तरह का एक गुप्त अलिखित समझौता था कि कोई भी जाति, दूसरी जाति के काम में परेशानी पैदा नहीं करती थी तथा सभी को एक दूसरे के हुनर की

कद्र थी। इस तरह सिर्फ एक चीज अर्थात पैसे का बोलबाला नहीं था , बल्कि हर हुनर से बनायी गयी वस्तु की क़द्र गाँव में हुआ करती थी। हर क्षेत्र के गांवों की अलग अलग विशेषता होती थीं। जैसा कि हम जानते हैं यह देश विविधताओं से भरा हुआ है , तो हर थोड़ी दूर पर भाषा , बोली, भोजन आदि बदलते हैं। यही बात कला और हुनर में भी शामिल थी तथा हर क्षेत्र के कला और हुनर भी विभिन्न प्रकार के थे। इसी आधार पर लोहार, सुतार, बुनकर, कुम्हार , बढ़ई, शिल्पकार , मोची, किसान आदि अपने अपने हुनर के हिसाब से कई अदभुत वस्तुओं का निर्माण करते थे। जिनका सर्वप्रथम उपयोग गांवों की अर्थव्यवस्था में तथा गांवों के लोगों के लिए होता था तथा उसके बाद बचा हुआ सामान बाहर बिकने जाता था। इस व्यवस्था में गांवों वालों की जरूरतें पूर्ण होने के बाद भी इतना कुछ बच जाता था कि भारत के बाहर तक उन्हें व्यापारी बेचने जाया करते थे। इसी आधार पर मसाले , कपडे , स्टील आदि का व्यापार भारत से बड़ी मात्रा में हुआ तथा भारत १७०० सालो तक विश्व की अर्थव्यवस्था में अव्वल स्थान अर्जित करता रहा।

समकालीन समुदाय आधारित व्यापार व्यवस्था :
अंग्रेजो की शिक्षा व्यवस्था एवं कठोर कानूनों के कारण बहुत से उद्योग नष्ट होते चले गए मगर उसके बाद भी कुछ जातियों और समुदायों ने स्वयं को बचाकर रखा तथा आजादी के बाद अपनी एकता के कारण फिर उठ खड़े हुए , उन्ही में से कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं। तमिलनाडु के तिरुपूर ने होज़री, बुने वस्त्र, आरामदायक कपड़ों और खेल वस्त्रों के प्रमुख स्रोत के रूप में वैश्विक पहचान प्राप्त की है। तीन दशकों के दौरान तिरुपूर, देश में बुने हुए वस्त्रों की राजधानी के रूप में उभरा है। १९८४ में जहाँ तिरुपुर की कमाई १० करोड़ से कम थी , वही २००७-२००८ तक ११'००० करोड़ तक पहुँच गयी थी। तिरुपुर के व्यापार की सफलता का मूल कारण वहां के समुदाय के आपस के सम्बन्ध हैं। इनका सारा लेन – देन आपस में कई सालों तक बिना लिखा पढ़ी के विश्वास के आधार पर चला है तथा यहाँ की जातियों ने एक दूसरे की मदद करके एक दूसरे को आगे बढाया है।

इसी तरह गुजरात के सूरत में हीरा व्यापारियों का एक समुदाय है। इनमे से अधिकतर हीरे को तराशने का काम करते हैं और इनमे भी इनके समुदाय तथा जातियों की और परिवार की मदद बहुत मिलती है। इनका व्यापार भी अधिकतर इनके आपस के संपर्क तथा इनकी जाती और समुदाय के कारण ही इतना फ़ैल पाया है। इसी तर्ज पर गुजरात के कई व्यापार और घराने काम करते हैं तथा गुजरात के मारवाड़ी और जैन समाज के लोग देश में सबसे सफल उद्योगपतियों में से हैं।

इसी तरह का एक उदाहरण सिवाकासी तमिलनाडु का है। पहले यहाँ सिर्फ खेती हुआ करती थी। पर कुछ लोग यहाँ से बंगाल गए तथा वहां माचिस बनाने का कार्य सीखा फिर उन लोगों ने यहाँ आकर माचिस बनाने का कार्य शुरू किया और बाद में पठाखे और प्रिंटिंग के उद्योग भी यहाँ लगाये गए। आज ५२० प्रिंटिंग के उद्योग, ५३ माचिस बनाने के उद्योग तथा ३२ केमिकल बनाने के उद्योग आदि कई उद्योग हैं। इसके पीछे भी कारण परिवार , जाति और समुदाय का एक दूसरे को सिखाना तथा लोगों का अपने लोगों की मदद करना ही है। यहाँ एक उद्योग से दूसरा फिर दूसरे से तीसरा पनपता चला गया तथा आज यहाँ भी करोड़ों का व्यापार होता है। यह भी जाति और समुदाय आधारित व्यापार का अनूठा उदाहरण है।

सहरिया जनजाति के लोगों में लोहे से स्टील बनाने की अद्भुत कला है तथा यह जनजाति मध्यप्रदेश

और छत्तीसगढ़ में रहती है। यह लोग सदियों से स्टील बनाते आये हैं। इनके बनाये गए स्टील में कभी जंग नहीं लगती। तथा इनकी भट्टियाँ प्राकृतिक आधार पर बड़ी कंपनियों के बराबर गुणवत्ता का स्टील बना लेती हैं। इस जाति में भी स्टील तथा लोहे का सामान हाथों से बनाने का अद्भुत हुनर है।

वाराणसी में विभिन्न कुटीर उद्योग कार्यरत हैं, जिनमें बनारसी रेशमी साड़ी, कपड़ा उद्योग, कालीन उद्योग एवं हस्तशिल्प प्रमुख हैं। इनमे भी अधिकतर कार्य उन कारीगरों द्वारा किया जाता है जिनका संबंध जुलाहा नामक जाति से है। अभी तक भी इसमें कुछ ही जातियां है जो इस काम को सदियों से करती आ रही हैं। अंग्रेजी अफसर लॉर्ड मकॉले के अनुसार, वाराणसी वह नगर था, जिसमें समृद्धि, धन-संपदा, जनसंख्या, गरिमा एवं पवित्रता एशिया में सर्वोच्च शिखर पर थी। यहां के व्यापारिक महत्त्व की उपमा में उसने कहा था : " बनारस की खड्डियों से महीनतम रेशम निकलता है, जो सेंट जेम्स और वर्सेल्स के मंडपों की शोभा बढ़ाता है"। कपड़ों के इसी तरह के उद्योग बंगाल में भी देखे जा सकते हैं। भारत का बनाया "कालीन" दुनिया भर के बाजारों में बिकता था जब तक कि अमेरिका जैसे देशों ने एंटी डंपिंग जैसे कानून बना कर इसे नहीं रोका। हाल ही में चाइल्ड लेबर के कानून से भी कई स्वदेशी उद्योगों को काफी नुकसान पंहुचा है , क्योंकि कई सारी जातियों में हुनर एक पीडी से दूसरी पीड़ी तक बचपन से ही पंहुचा दिया जाता था तथा माता – पिता बचपन से ही बच्चों को अपनी प्राचीन जातिगत कला तथा हुनर में दक्ष कर दिया करते थे। मगर चाइल्ड लेबर कानून के आने के बाद कई उद्योगों पर छापे मारे गए तथा लाखों बच्चों को यह हुनर सीखने से रोक दिया गया। इसके कारण कई उद्योग तथा जातिगत ज्ञान नष्ट होता चला गया।

इन सब के बाद भी यदि देखा जाए तो भारत की अर्थव्यवस्था में अधिकतम योगदान बड़े संगठित क्षेत्र की जगह इन छोटे असंगठित क्षेत्रों से ही आता है। पर यदि बड़े संगठित व्यापारों को भी देखा जाए तो इनमे भी अम्बानी, टाटा, ओबेरॉय आदि बहुत से उद्योग परिवार व्यवस्था पर ही चल रहे हैं। यही नहीं अमेरिका और कनाडा आदि में भी पंजाबी तथा जैन या मारवाड़ी लोगों ने अपने समुदाय के आधार पर कई उद्योग खड़े किये हैं।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों का मकड़जाल :
सोचिये कैसा लगेगा जब दुनिया भर में पीने के लिए सिर्फ पेप्सी और कोका कोला मिले , खाने के लिए सिर्फ बर्गर , पिज़्ज़ा। कैसा रहेगा जब जूते और कपडे भी सिर्फ एडिडास या प्यूमा के हों और दुनिया के सारे रिटेल मार्किट सिर्फ वाल्ल्मार्ट नाम से हों। कैसा लगेगा जब ई कॉमर्स का नाम अमेज़न या अली बाबा हो जाए तथा कंप्यूटर का नाम माइक्रोसॉफ्ट या एप्पल। इससे भी बढ़कर यदि सारे बीज, खाद्दान्न तथा फसल, फल , फूल आदि सिर्फ मोनसेंटो या बेयर नाम से बिकें और पानी पेप्सी कोकाकोला के द्वारा बेचा जाए। कैसी होगी वह दुनिया जहाँ कपड़ो के नाम पर सिर्फ सूट-टाई तथा भाषा के नाम पर सिर्फ अंग्रेजी रह जायेगी।

यह सब कोई कोरी कल्पना नहीं है बल्कि धीरे धीरे जिस तरह से बड़े उद्योग , छोटे उद्योगों को विकास और रोजगार के नाम पर निगलते जा रहे हैं , इससे यह सब सत्य होता प्रतीत होता है जो ऊपर लिखा गया है। दुनिया से विविधता तथा प्राचीन ज्ञान मरता जा रहा है और उसका स्थान सिर्फ एक पश्चिमी सभ्यता लेती जा रही है। असमानता का उदाहरण इसी बात से दिया जा सकता है कि दुनिया के सिर्फ

तीन अमीर व्यक्तियों की आय 48 देशों की आय के बराबर है। यही नहीं सिर्फ १ प्रतिशत लोगों के पास दुनिया के ९९ % लोगों से अधिक आय है तथा ऑक्सफेम की रिपोर्ट के मुताबिक दुनिया के सबसे अमीर १% लोगों के पास दुनिया की ५० प्रतिशत से अधिक आय का हिस्सा है। इन्ही अमीर लोगों की आय निरंतर बढती ही जा रही है तथा इन्ही लोगों के हाथों में कई बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियां हैं। अमीर होना बुरी बात नहीं है मगर सिर्फ मुनाफा कमाने के लिए सरकारों को खरीद लेना , तख्तापलट करवा देना तथा पर्यावरण का नाश कर देना कहाँ तक उचित है , यह प्रश्न सभी को आज पूछना होगा। महात्मा गांधी कहते थे "जितना काम उतने हाथ " की जगह "जितने हाथ उतना काम " का सिद्धांत अपनाया जाना चाहिए तथा औद्योगीकरण की अंधी दौड़ में स्वदेशी लघु उद्योगों की उपेक्षा उचित नहीं है।

उपसंहार :
इस शोधपत्र के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत का व्यापार भारत की जातियों, समुदायों तथा लघु उद्योगों पर टिका हुआ है। जितनी भी बार दुनिया में मंदी का दौर आया है तब भारत इन्ही असंगठित क्षेत्र के छोटे उद्योगों तथा परिवार व्यवस्था की बचत के आधार पर बचा है । आज जो जातियों को ख़त्म करने तथा परिवार व्यवस्था को समाप्त करने की बातें कई एनजीओ कर रहे हैं , इनकी विदेशो से फंडिंग के पीछे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथ को नकारा नहीं जा सकता। अंग्रेजो के कई कानून जिनके कारण जातिगत व्यापार व्यवस्था समाप्त हुई है उनकी समीक्षा तथा शोध की आवश्यकता है ताकि उन्हें ठीक किया जा सके। बच्चों के काम करने से जुड़े हुए कानूनों पर भी पुनः विचार करने की आवश्यकता है तथा पूर्ण अध्ययन की आवश्यकता है जिससे एक तरफ इन बच्चों को अन्याय एवं शोषण से बचाया जा सके वहीँ दूसरी तरफ इनको इनके जातिगत ज्ञान तथा कला से भी जुड़ा हुआ रखा जा सके।

इसी के साथ इस विषय पर भी अध्ययन की आवश्यकता है कि आज़ादी के बाद से अब तक बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने कितना पैसा भारत में लगाया है और कितना वो उसके बदले में भारत से कमा कर ले गयी हैं । इसी के साथ इस बात पर भी शोध की जरुरत है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों तथा एॅफ़.डी .आई . से कितना रोजगार भारत में आया है तथा छोटे लघु उद्योग तथा असंगठित क्षेत्र से कितना रोजगार और पैसा भारत को मिला है।

अंत में , भारत १७०० सालों तक निरंतर दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था एवं सबसे बड़ा निर्यातक देश कैसे बना रहा , इस बात पर एक अध्ययन होना चाहिए। प्राथमिक क्षेत्र एवं कृषि आधारित उद्योगों को अंग्रेजी कानूनों ने कैसे समाप्त किया तथा इनमे से कौनसे कानून अब भी चल रहे हैं , इस विषय पर भी शोध एवं समीक्षा की आवश्यकता है। ताकि भारत अपने चित्त, मानस और काल के आधार पर स्वयं को पहचान सके और दीनदयाल उपाध्याय के कहे अनुसार ना "पूंजीवाद " ना "साम्यवाद" बल्कि स्वयं का एक रास्ता निर्मित कर सके जिससे सिर्फ भारत ही नहीं बल्कि दुनिया के सभी देशों को विकास का एक रास्ता मिल सके जो व्यक्ति , समाज, तथा पर्यावरण तीनो के अनुकूल हो।

साभार-https://www.indica.today/bharatiya-languages/ से